

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 10: श्रीकृष्ण का द्वारका-प्रस्थान

11 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



रथ पर विराजमान और पुष्पों की वर्षा से अभिषिक्त श्रीकृष्ण हस्तिनापुर से विदा लेकर अपनी नगरी द्वारका की ओर प्रस्थान करते हैं, जबकि शोकाकुल कुरु-कुल उन्हें जाते हुए देखता रहता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

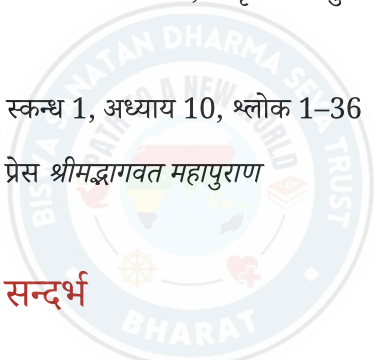
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिमयी यात्रा। युद्ध कब का समाप्त हो चुका है, महान् भीष्म प्रयाण कर चुके हैं, और कुरुओं का सिंहासन एक बार फिर धर्मात्मा युधिष्ठिर के हाथों में सुरक्षित है। इस कठिनाई से पाई गई शान्ति में प्रथम स्कन्ध का दसवाँ अध्याय एक शान्त, हृदय को कचोटने वाली विदा लाता है। कुछ समय अपने शोकाकुल

परिजनों को सान्त्वना देकर, श्रीकृष्ण अन्ततः द्वारका लौटने को उद्यत होते हैं — और सम्पूर्ण नगर उन्हें जाने देने का साहस नहीं जुटा पाता। यहाँ हम देखते हैं कि जब प्रियतम विदा लेने को मुड़ते हैं तब भक्ति कैसी अनुभूति होती है: प्रियजनों का मूर्च्छित हो जाना, छतों से पुष्पों की वर्षा, हस्तिनापुर की स्त्रियों के मुख से भगवद्-महिमा, और स्वयं भगवान् का कोमल, मुस्कराता हुआ अपनी सागर-तटीय नगरी की ओर प्रस्थान।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 1 (प्रथम स्कन्ध)
- अध्याय: 10 (दशम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: श्रीकृष्ण का द्वारका-प्रस्थान
- प्रमुख वक्ता: पूज्य सूत जी, उग्रश्रवा (कथावाचक); शौनक जी (प्रश्नकर्ता); हस्तिनापुर की स्त्रियाँ
- प्रमुख श्रोता: नैमिषारण्य में एकत्र ऋषिगण, शौनक जी के नेतृत्व में
- मुख्य स्थल: हस्तिनापुर नगर तथा द्वारका की ओर जाता हुआ सुदीर्घ पश्चिमी मार्ग
- केन्द्रीय विषय: युधिष्ठिर का धर्ममय राज्य, श्रीकृष्ण की कुरुओं से विदा, हस्तिनापुर की स्त्रियों द्वारा गाई गई भगवद्-महिमा, तथा भगवान् की द्वारका-यात्रा
- प्रमुख श्लोक-परास: स्कन्ध 1, अध्याय 10, श्लोक 1-36
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय से सन्दर्भ

नवम अध्याय में पितामह भीष्म शरशय्या पर लेते अपने प्रयाण के शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रीकृष्ण की उपस्थिति में उन्होंने युधिष्ठिर को राजधर्म तथा सनातन धर्म-सिद्धान्तों का विस्तृत उपदेश दिया, और फिर अपने सम्पूर्ण मन, वाणी और दृष्टि को भगवान् में स्थिर कर प्राण त्याग दिये और एक अखण्ड ब्रह्म में लीन हो गये। अन्त्येष्टि-क्रियाओं के पश्चात्, और ऋषियों के अपने-अपने आश्रमों को लौट जाने पर, युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के साथ हस्तिनापुर लौटे, अपने चाचा धृतराष्ट्र और चाची गान्धारी को सान्त्वना दी, और — बड़ों की अनुमति तथा भगवान् के अनुमोदन से — अपने पैतृक राज्य का धर्ममय शासन ग्रहण किया। यहीं से दसवाँ अध्याय आरम्भ होता है।

युधिष्ठिर का धर्ममय राज्य

अध्याय एक प्रश्न से आरम्भ होता है। एकत्र ऋषियों में अग्रणी शौनक जी कथावाचक से पूछते हैं: अपने वैध उत्तराधिकार को हड़पने के इच्छुक दुष्टों का संहार करने के पश्चात्, धर्मधारियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ने अपने छोटे भाइयों के साथ किस प्रकार शासन किया — वे, जो इन्द्रिय-भोग में कोई रुचि नहीं रखते थे — और तत्पश्चात् उन्होंने क्या सम्पन्न किया?

पूज्य सूत जी उत्तर देते हैं। आन्तरिक कलह की दावाग्नि से प्रायः भस्म हो चुके कुरु-वंश को पुनः अंकुरित और हरा-भरा कर, और युधिष्ठिर को उनके अपने राज्य पर सुदृढ़ रूप से प्रतिष्ठित कर, सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि — समस्त लोकों के हितैषी — हृदय में प्रसन्न हुए। भीष्म तथा स्वयं भगवान् अच्युत के उपदेश से उदित हुए ज्ञान द्वारा जिनका मोह दूर हो चुका था, वे युधिष्ठिर समुद्र-पर्यन्त समस्त पृथ्वी पर स्वर्ग में इन्द्र के

समान शासन करने लगे — अजेय भगवान् की रक्षा में और अपने भाइयों की निष्ठामयी सेवा से युक्त।



राजा युधिष्ठिर के धर्ममय राज्य में वर्षा समय पर होती है, पृथ्वी अपना धन देती है, और गौएँ प्रसन्नतापूर्वक चरागाहों को दूध से सींचती हैं (श्लोक 4-6)।

उनके शासन में समस्त सृष्टि समृद्ध हुई। वर्षा-देव आवश्यकतानुसार जल बरसाते; पृथ्वी सब मनोवांछित वस्तुएँ देती; और भारी थनों वाली गौएँ, हृदय से प्रसन्न होकर, गोशालाओं को दूध से सींच देतीं। नदियाँ और समुद्र, पर्वत, वृक्ष, लताएँ और सब प्रकार की ओषधियाँ प्रत्येक ऋतु में अपनी प्रचुर उपज देतीं। और कोई प्राणी कभी पीड़ित न होता — न मन के क्लेशों से, न शारीरिक रोग से, न देव, अन्य प्राणी अथवा अपने शरीर-मन से उत्पन्न किसी दुःख से — जब तक किसी को अपना शत्रु न मानने वाले युधिष्ठिर राजा के रूप में शासन करते रहे।

नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः । अजातशत्रावभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ॥ ६ ॥

nādhayo vyādhayaḥ kleśā daiva-bhūtātma-hetavaḥ । ajāta-śatrāv abhavan jantūnām rājñi karhicit ॥ 6 ॥

अर्थ: किसी को शत्रु न मानने वाले युधिष्ठिर के राजा रहते हुए, किसी भी प्राणी को कभी मन की व्यथा, शारीरिक रोग, अथवा देवों, अन्य प्राणियों या अपने शरीर-मन से उत्पन्न किसी भी प्रकार की पीड़ा नहीं व्यापी। (श्रीमद्भगवतम् 1.10.6)

भगवान् विदा माँगते हैं

अपने मित्रों और परिजनों को सान्त्वना देने के लिए, तथा अपनी बहन सुभद्रा के हर्ष के लिए, कुछ मास हस्तिनापुर में रहकर, श्रीहरि ने अन्ततः अपनी नगरी लौटने हेतु राजा युधिष्ठिर से विदा माँगी। राजा की अनुमति पाकर भगवान् ने उन्हें आलिंगन किया और प्रणाम किया; और अपने से समवयस्क या छोटे सबसे आलिंगित तथा अभिवादित होकर, वे अपने रथ पर आरूढ़ हुए।

तब समस्त परिवार में शोक की एक लहर दौड़ गई। सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, और राजा विराट की पुत्री उत्तरा; गान्धारी और धृतराष्ट्र; युयुत्सु और कृपाचार्य; नकुल और सहदेव, भीमसेन और धौम्य; सत्यवती तथा अन्य स्त्रियाँ — सब शार्ङ्ग-धनुष धारण करने वाले भगवान् से वियोग की कल्पना मात्र से मूर्च्छित-सी हो गई। क्योंकि सूत जी उस सत्य को कहते हैं जिसे भगवान् का प्रत्येक प्रेमी जानता है:

सत्सङ्गान्मुक्तदुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः । कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन् विरहं कथम् । दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः ॥ १२ ॥

sat-saṅgān mukta-duḥsaṅgo hātum notsahate budhaḥ । kīrtyamānam yaśo yasya sakṛd ākarṇya rocanam ॥ 11 ॥ tasmin nyasta-dhiyaḥ pārthāḥ saheran virahaṁ katham । darśana-sparśa-samlāpa-śayanāsana-bhojanaiḥ ॥ 12 ॥

अर्थ: सत्संग द्वारा कुसंग से मुक्त हुआ बुद्धिमान् पुरुष, एक बार सुन लेने पर, भगवान् की गाई जाती मनोहर महिमा को सुनना छोड़ने का साहस नहीं कर पाता। तब भला वे पार्थ (पाण्डव), जिनका मन ही उनमें अर्पित था, और जिन्हें उनके दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप का तथा उनके साथ शयन, आसन और भोजन का सौभाग्य मिला था — उनके वियोग को कैसे सह पाते? (श्रीमद्भागवतम् 1.10.11-12)



रथ पर आरुढ़ होने से पूर्व भगवान् राजा युधिष्ठिर को प्रणाम कर आलिंगन करते हैं, जबकि विदा न सह पाता राजपरिवार शोक में उनके चारों ओर एकत्र है (श्लोक 7-10)।

अपलक नेत्रों से उन्हें निहारते हुए, स्नेह की डोरियों से बँधे, वे सब इधर-उधर दौड़ते रहे, उनके हृदय भगवान् के पीछे भागते रहे। और जब देवकीनन्दन श्रीकृष्ण महल से प्रस्थान करने को हुए, तब परिवार की स्त्रियों ने — इस भय से कि कहीं गिरा हुआ एक आँसू भी यात्रा में उनका अनिष्ट न कर दे — अपने विरहातुर नेत्रों में उमड़ते आँसुओं को रोक लिया।

छतों से पुष्प-वर्षा

अब सम्पूर्ण नगर एक भव्य और विषादपूर्ण विदा में लीन हो गया। ढोल और शंख, नगाड़े और वीणा, झाँझ, तुरही और अनेक प्रकार के मृदंग एक साथ बज उठे। कुरु-कुल की स्त्रियाँ श्रीकृष्ण के दर्शन हेतु अपने भवनों की छतों पर चढ़ गईं, और प्रेम तथा लज्जा से मिश्रित मुस्कुराती चितवनों के साथ उन पर पुष्पों की वर्षा करने लगीं।



अर्जुन अपने परम प्रिय सखा के ऊपर मोतियों से जड़ा श्वेत छत्र धारण करते हैं, जबकि उद्धव और सात्यकि चँवर डुलाते हैं, और कुरु-कुल की स्त्रियाँ छतों से पुष्प बरसाती हैं
(श्लोक 16-18)।

तब घने केशों वाले अर्जुन ने, जो भगवान् के प्रिय और उनके सखाओं में सर्वाधिक प्रिय थे, अपने परम प्रिय मित्र के ऊपर मोतियों की लड़ियों से सुसज्जित और रत्नजड़ित दण्ड वाला एक श्वेत छत्र उठाकर तान दिया।

सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् । रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥ १७ ॥

sitātapatraṁ jagrāha muktādāma-vibhūṣitam । ratna-daṇḍaṁ guḍākeśaḥ priyaḥ priyatamasya ha
॥ 17 ॥

अर्थ: भगवान् के परम प्रिय, घने केशों वाले अर्जुन ने अपने प्रियतम सखा के ऊपर मोतियों की लड़ियों से सुशोभित और रत्नजड़ित दण्ड पर टिका एक श्वेत छत्र उठाकर धारण किया। (श्रीमद्भगवतम् 1.10.17)

उद्धव और सात्यकि ने दो अद्भुत चँवरों से उन्हें बीजा; और मार्ग-भर पुष्पों से अभिषिक्त, मधुपति श्रीकृष्ण जगमगाती आभा से शोभायमान हुए। सर्वत्र ब्राह्मणों ने उन पर सच्चे आशीर्वादों की वर्षा की — ऐसे वचन, जो यद्यपि भगवान् के निर्गुण, परम स्वरूप में उन पर लागू नहीं होते, तथापि उनके सगुण, कृपायुक्त स्वरूप के लिए पूर्णतः उपयुक्त हैं।

हस्तिनापुर की स्त्रियों की महिमा-स्तुति

ज्यों ही भगवान् आगे बढ़े, अनुपम कीर्ति वाले श्रीकृष्ण में हृदय अर्पित कर चुकी हस्तिनापुर की स्त्रियाँ परस्पर बातें करने लगीं — और उनके वचनों ने सुनने वाले सबके कान और हृदय मोह लिये।



हस्तिनापुर की स्त्रियाँ, अपना हृदय श्रीकृष्ण में स्थिर किये, परस्पर उनकी महिमा का — उस सनातन पुरुष की, उस भगवान् की जो युग-युग में अवतार लेते हैं — वर्णन करती हैं (श्लोक 20-30)।

उन्होंने कहा, ये तो वही सनातन आदिपुरुष हैं, वह एकमात्र सत्य जो अकेले विद्यमान रहता है:

स वै किलायं पुरुषः पुरातनो य एक आसीदविशेष आत्मनि । अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे निमीलितात्मनिशि सुप्तशक्तिषु ॥ २१ ॥

sa vai kilāyaṁ puruṣaḥ purātano ya eka āsīd aviśeṣa ātmani । agre guṇebhyo jagad-ātmanīśvare nimīlitātman niśi supta-śaktiṣu ॥ 21 ॥

अर्थ: ये निश्चय ही वही सनातन आदिपुरुष हैं, जो गुणों के प्रकट होने से पूर्व — जब प्रलय की रात्रि में जीव उनमें, जगत् की आत्मा और ईश्वर में, विलीन हो जाते हैं और समस्त सृजन-शक्तियाँ सुप्त रहती हैं — अपने ही स्वरूप में अभेद रूप से अकेले विद्यमान रहते थे। (श्रीमद्भागवतम् 1.10.21)

उन्होंने विस्मय से कहा, यही वे हैं जिन्होंने — निराकार, नामरहित आत्मा को रूप और नाम देने की इच्छा से — अपनी सृजन-शक्ति, अपनी प्रकृति को प्रेरित किया और वेदों तथा अन्य शास्त्रों को प्रकट किया; वे ही शास्त्रों के रचयिता हैं। वे ही वह परमात्मा हैं जिन्हें भक्ति से समस्त मल-रहित हुए हृदय वाले, इन्द्रियों और प्राण को वश में किये हुए ऋषि अपने भीतर देखते हैं; क्योंकि वे ही हृदय को शुद्ध कर सकते हैं। वे ही वह भगवान् हैं जिनकी पवित्र कथाएँ वेदों तथा गूढ़ शास्त्रों में गहनतम सत्य के ज्ञाता ऋषियों द्वारा बार-बार गाई जाती हैं, और जो अपनी ही स्वच्छन्द लीला में जगत् का सृजन, पालन और संहार करते हैं, फिर भी उससे अलिप्त रहते हैं। और जब भी अज्ञान से आच्छन्न बुद्धि वाले राजा अधर्म पर उतर आते हैं, तब वे ही युग-युग में नाना रूप धारण कर जगत् को सुव्यवस्थित करने अवतरित होते हैं।

फिर स्त्रियाँ उस भूमि को आशीष देने लगीं जिसे भगवान् ने छुआ था: कितना श्लाघ्य है यदु का वंश, जो उनके जन्म से सम्मानित हुआ; कितना पवित्र है मधु का वन, जो उनके विचरण से पावन हुआ; कितनी धन्य है कुशस्थली — द्वारका — जिसके निवासी नित्य अपने प्रभु की मुस्कुराती चितवन का दर्शन पाते हैं। उन्होंने उनकी रानियों की भी चर्चा की — रुक्मिणी, जाम्बवती, नाग्नजिती आदि — जिन्होंने अपने पूर्व-सुकृतों से ऐसा गौरवशाली प्रभु पाया, और जिनके जीवन ने स्वयं नारीत्व को उठाया और पवित्र किया। रथ के आगे बढ़ते-बढ़ते उनकी यही प्रेममयी वार्ता चलती रही।

द्वारका को ओर यात्रा

जब नगर की स्त्रियाँ अभी ये वचन कह ही रही थीं, श्रीहरि एक कृपामयी मुस्कान से उनका अभिनन्दन करते हुए आगे बढ़ चले। किसी को शत्रु न मानने वाले, किन्तु भगवान् को उनके शत्रुओं से संकट की आशंका करने वाले राजा युधिष्ठिर ने शुद्ध स्नेहवश उनके साथ रक्षा हेतु एक पूर्ण चतुरंगिणी सेना — हाथी, घोड़े, रथ और पैदल — भेज दी।

तब श्रीकृष्ण ने, यह देखकर कि गहन प्रेम से बँधे पाण्डव विरह के दुःख में उनके पीछे बहुत दूर तक चले आये हैं, उन्हें दृढ़तापूर्वक लौटा दिया, और अपने प्रिय साथियों के साथ अपनी नगरी की ओर प्रस्थान किया। वे कुरुजांगल और पांचाल के प्रदेशों से, शूरसेन और यमुना-तटवर्ती भूभाग से, ब्रह्मावर्त और कुरुक्षेत्र से, मत्स्य तथा सारस्वत के राज्यों से, और मरुधन्व के मरुस्थल को पार करते हुए; और सौवीर तथा आभीर के प्रदेशों से आगे बढ़कर अन्ततः आनर्त देश पहुँचे — लम्बे मार्ग से उनके अश्व कुछ थक चुके थे।



द्वारका के लम्बे मार्ग पर जब सन्ध्या उतरती है, भगवान् रथ से उतरकर एक शान्त सरोवर के तट पर अपनी सन्ध्या-वन्दना करते हैं (श्लोक 36)।

तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः । सायं भेजे दिशं पश्चाद्विष्ठो गां गतस्तदा ॥ ३६ ॥

tatra tatra ha tatratyair hariḥ pratyudyatārhaṇaḥ । sāyaṁ bheje diśaṁ paścād gaviṣṭho gāṁ gatas tadā ॥ 36 ॥

अर्थ: जिस-जिस प्रदेश से वे गुज़रते, वहाँ के लोग उपहार लेकर श्रीहरि का सम्मान करने आगे आते। और जब सन्ध्या समीप आती, तब भगवान् रथ से उतरते, किसी सरोवर के पास जाते, और वहाँ अपनी सन्ध्या-वन्दना करते। (श्रीमद्भागवतम् 1.10.36)

इसी कोमल चित्र के साथ अध्याय समाप्त होता है — स्वयं परमेश्वर, सूर्यास्त के समय, रथ से उतरकर जल के तट पर वन्दना में बैठते हुए, अपने ही आचरण से उस पवित्र अनुशासन की शिक्षा देते हुए जो उन्होंने जगत् को दिया है। इस प्रकार दसवाँ अध्याय समाप्त होता है, जो नैमिषारण्य के ऋषियों के मध्य चल रही उस महान् कथा का ही एक अंग है।

प्रमुख श्लोक

स्त्रियों की महिमा-स्तुति एक ही श्लोक में भगवान् के अवतार का सनातन सिद्धान्त समेट लेती है — कि निराकार प्रत्येक युग में रूप क्यों धारण करते हैं:

यदा ह्यधर्मेण तमोऽधियो नृपा जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः किल । धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ॥ २५ ॥

yadā hy adharmeṇa tamo-dhiyo nṛpā jīvanti tatraiṣa hi sattvataḥ kila । dhatte bhagaṁ satyam ṛtaṁ dayāṁ yaśo bhavāya rūpāṇi dadhad yuge yuge ॥ 25 ॥

अर्थ: जब भी तमोगुण से आच्छन्न बुद्धि वाले राजा अधर्म से जीवन-यापन करते हैं, तब भगवान् शुद्ध सत्त्व का आश्रय लेकर अपनी दिव्य महिमा — सत्य, ऋत (धर्म-व्यवस्था), दया और यश — प्रकट करते हैं, और युग-युग में नाना रूप धारण कर जगत् के कल्याण हेतु अवतरित होते हैं। (श्रीमद्भागवतम् 1.10.25)

और अध्याय का प्रथम श्लोक धर्म की पुनर्स्थापना में भगवान् के अपने आनन्द को चुपचाप प्रकट करता है:

वंशं कुरोर्वशदवाग्निनिर्हृतं संरोहयित्वा भवभावानो हरिः । निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो युधिष्ठिरं प्रीतमना बभूव ह ॥ २ ॥

vaṁśaṁ kuror vaṁśa-davāgni-nirhṛtaṁ saṁrohayitvā bhava-bhāvano hariḥ । niveśayitvā nija-rājya īśvaro yudhiṣṭhiraṁ prīta-manā babhūva ha ॥ 2 ॥

अर्थ: समस्त प्राणियों के हितैषी भगवान् श्रीहरि का हृदय आनन्द से भर उठा — लगभग नष्ट हो चुका कुरु-वंश उनकी इच्छा से पुनः जीवित हो उठा था, और उसका यथार्थ उत्तराधिकारी अब निश्चिन्त होकर सिंहासन पर विराजमान था। (श्रीमद्भागवतम् 1.10.2)

प्रमुख शिक्षाएँ

1. धर्ममय शासन समस्त सृष्टि को आशीष देता है। भीष्म तथा कृष्ण के उपदेश से जिनका मोह दूर हो चुका था, उन युधिष्ठिर के राज्य में वर्षा समय पर होती, पृथ्वी मुक्त हस्त देती, गौएँ दूध से उमड़तीं, और कोई प्राणी किसी प्रकार का क्लेश न जानता (श्लोक 3–6)। जो शासन करता है, जब उसका हृदय भगवान् की ओर मुड़ा रहता है, तब समस्त जगत् धर्म के साथ समरस हो जाता है।
2. भगवान् से वियोग भक्त का गहनतम शोक है। समस्त परिवार मूर्च्छित-सा हो गया; जिन पाण्डवों ने उनके साथ भोजन किया और शयन किया, वे उनका जाना सह न सके (श्लोक 9–12)। भगवान् की निकटता आत्मा का सच्चा धन है, और उस निकटता का खो जाना ही एकमात्र वास्तविक दरिद्रता।
3. एक बार उनकी महिमा का रसास्वादन कर लेने पर हृदय उसे कभी नहीं छोड़ पाता। सत्संग से मुक्त हुआ बुद्धिमान् एक बार भी भगवान् की महिमा सुनकर उसका आनन्द छोड़ नहीं पाता (श्लोक 11)। श्रवण ही भक्ति का बीज है, और वह जीवन-भर जड़ पकड़कर बढ़ता रहता है।
4. भगवान् युग-युग में जगत् के कल्याण हेतु अवतरित होते हैं। जब अधर्म प्रबल होता है, तब वे सत्य, दया और यश प्रकट कर युगे युगे रूप धारण करते हैं (श्लोक 25)। उनके अवतार अपने लिए नहीं, अपितु दुःखी जगत् पर शुद्ध कृपा के कार्य हैं।

5. भक्ति बलवानों को विनम्र और विनम्रों को तेजस्वी बनाती है। महान् धनुर्धर अर्जुन सेवक की भाँति छत्र थामते हैं; उद्धव और सात्यकि चँवर डुलाते हैं; स्त्रियाँ छतों से महिमा गाती हैं; मार्ग में ग्रामीण उपहार लेकर आगे बढ़ते हैं। प्रेममयी सेवा में कोई भूमिका छोटी नहीं, और कोई भी सबसे महान् से नीची नहीं।

6. स्वयं भगवान् भी उस अनुशासन का सम्मान करते हैं जो वे देते हैं। सन्ध्या के समय श्रीकृष्ण रथ से उतरकर अपनी सन्ध्या-वन्दना करते हैं (श्लोक 36)। स्वयं परमेश्वर उन पवित्र आचारों का पालन करते हैं जो उन्होंने हमें सौंपे हैं, अपने ही उदाहरण से यह सिखाते हुए कि भक्ति की दैनिक लय से कोई ऊपर नहीं।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

विदाओं के इस अध्याय में एक कोमल शिक्षा छिपी है। हस्तिनापुर के लोग कृष्ण को सदा के लिए नहीं खो रहे — वे तो बस घर लौट रहे हैं — फिर भी वे ऐसे शोक करते हैं मानो जगत् से प्रकाश ही जा रहा हो। उनका शोक दुर्बलता नहीं; यह उन हृदयों की स्वाभाविक टीस है जिन्होंने ठीक से प्रेम किया है। हम अपने जीवन को प्रायः इससे मापते हैं कि हमारे पास क्या है और हमने क्या पाया, किन्तु भागवत चुपचाप एक भिन्न प्रश्न पूछता है: वह क्या है जिससे बिछुड़ना हम सह नहीं पाते? पाण्डवों और नगर की स्त्रियों के लिए, वह उत्तर नवीन रूप से पुनः पाया गया राज्य नहीं था, न धन, न सुरक्षा, अपितु स्वयं भगवान् की निकटता। और कृष्ण, अपनी ओर से, किसी तेज-पुंज में अन्तर्धान नहीं होते; वे कोमलता से आगे बढ़ते हैं, अपने प्रेमियों की ओर मुड़कर मुस्कुराते हैं, सन्ध्या के समय एक सरोवर के तट पर वन्दना हेतु रुकते हैं। यह अध्याय हमें आमन्त्रित करता है कि हम उन अनेक वस्तुओं पर अपनी पकड़ ढीली करें जिन्हें हम कसकर थामे हैं, और अपनी तड़प वहाँ स्थिर करें जहाँ वह सचमुच उपयुक्त है — उस एक पर, जिनकी मुस्कुराती चितवन दूर जाते हुए भी हमारा अनुसरण करती है, और जो सचमुच कभी दूर नहीं हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

अन्तिम श्लोक में भगवान् के अपने उदाहरण का अनुसरण करते हुए, अपने दिन के दिव्य की ओर मुड़ाव को अंकित करें। जब सन्ध्या समीप आये — अथवा किसी भी स्थिर क्षण में जो आप निभा सकें — रुकें, शान्ति से बैठें, और एक संक्षिप्त सन्ध्या-प्रार्थना या पवित्र नाम कहें: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” कुछ अविचल श्वासों के लिए दिन की चिन्ताएँ उनके चरणों में रख दें। यदि सम्भव हो, तो इस अध्याय का एक श्लोक ऊँचे स्वर में पढ़ें और एक पंक्ति को अपने हृदय में ठहरने दें। छोटा और सच्चा, प्रतिदिन दोहराया गया, यही उस प्रेम का बीज बन जाता है जो उन्हें जाते हुए देख न सका।

उपसंहार

इस प्रकार श्रीमद्भागवत का दसवाँ अध्याय समाप्त होता है, जिसे भगवत्प्राप्त जन परमहंस-संहिता कहते हैं। इस अध्याय में, श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 10 में, हमने युधिष्ठिर का धर्ममय राज्य देखा, जिसमें वर्षा समय पर होती, पृथ्वी मुक्त हस्त देती, और कोई प्राणी दुःख न पाता; हमने श्रीकृष्ण को शोकाकुल कुरु-कुल से विदा लेते देखा, अपने सब प्रेमियों से आलिंगित और रोते हुए विदा किये जाते हुए; हमने तुरही और मृदंग सुने, अर्जुन को श्वेत छत्र उठाते और छतों से पुष्प गिरते देखे, और हस्तिनापुर की स्त्रियों को उस सनातन पुरुष की महिमा गाते सुना जो जगत् के कल्याण हेतु युग-युग में अवतरित होते हैं। और हमने भगवान् का आनर्त तक जाता सुदीर्घ पश्चिमी मार्ग पर अनुसरण किया, जहाँ

हर प्रदेश में उनका सम्मान हुआ, और सन्ध्या के समय वे अपनी सन्ध्या-वन्दना हेतु रुके। यहाँ भक्ति विदा का मुख धारण करती है — और उस विदा में हम सीखते हैं कि भगवान् कितने प्रिय हो चुके थे, और वे हमें कितने प्रिय हो सकते हैं। हम भी उन्हें उस सबसे अधिक कसकर थामें जिसे खोने का हमें भय है।

श्रीमद्भागवत का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाये।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

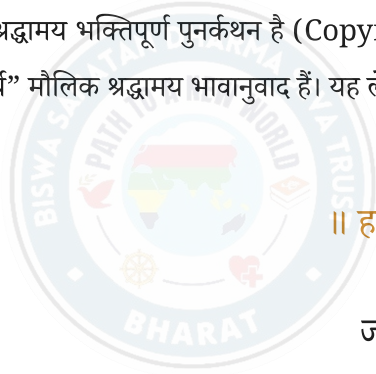
जय श्री माधव।

सन्दर्भ और आभार

मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, प्रथम स्कन्ध, दशम अध्याय, ग्रन्थ पृष्ठ 37–40।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट। पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं संस्तुति के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेख एक मौलिक, श्रद्धामय भक्तिपूर्ण पुनर्कथन है (Copyright MODE B)। किसी प्रकाशक का अनुवाद या टीका पुनरुत्पादित नहीं की गई; श्लोकों के “अर्थ” मौलिक श्रद्धामय भावानुवाद हैं। यह लेख किसी प्रकाशक या संस्था के प्रायोजन/समर्थन का संकेत नहीं करता।



॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-1-chapter-10-krishna-departs-for-dwaraka-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट